

रेवती च महाराज्ञी जिनेन्द्रवचने रता। वैराग्येन समादाय जैनीं दीक्षां सुखप्रदाम् ॥६६॥
क्रमेण तपसा ब्रह्म-स्वर्गे देवो महर्द्धिकः। संजातो जैनतीर्थेषु महायात्राविधायकः ॥६७॥
धर्मे श्रीजिनभाषिते शुचितरे स्वर्गोक्षसौख्यप्रदे देवेन्द्रैश्च नरेन्द्रखेचरतरैर्भक्त्या निसंसेविते।
भो भव्याः कुरुत प्रतीतिमतुलां चेदिच्छवः सत्सुखं त्यक्त्वा सर्वकुमार्गसङ्गमचिरं श्रीरेवतीवत्तराम् ॥६८॥

इति कथाकोशेऽमूढदृष्ट्यङ्गे श्रीमद्रेवतीकथा समाप्ता।

१०. श्रीजिनेन्द्रभक्तस्य कथा

नत्वा श्रीमज्जिनं भक्त्या स्वर्गमोक्षसुखप्रदम्। वक्ष्ये जिनेन्द्रभक्तस्य सत्कथां सोपगूहने ॥१॥
सौराष्ट्रविषयेऽत्रैव सरसे सद्धान्विते। श्रीमात्रेमिजिनेन्द्रस्य जन्मना सुपवित्रिते ॥२॥
पुरे पाटलिपुत्राख्ये राजा जातो यशोध्वजः। तस्य राज्ञी सुसीमाख्या रूपलावण्यमण्डिता ॥३॥
तयोः पुत्रः सुवीराख्यः सप्तव्यसनतत्परः। संजातः पापतः सोपि तस्करोत्करसेवितः ॥४॥
किं करोति पिता माता कुलं जातिश्च सर्वथा। भाविदुर्गतिदुःखानां कुले जन्मापि निष्फलम् ॥५॥
अथास्ति गौडदेशे च ताम्रलिप्ताभिधा पुरी। यत्र संतिष्ठते लक्ष्मीर्दानपूजायशस्करी ॥६॥

जिनभगवान् की परम भक्त महारानी रेवती भी जिनदीक्षा ग्रहण कर और शक्ति के अनुसार तपश्चर्या और आयु के अन्त में ब्रह्मस्वर्ग में जाकर महर्द्धिक देव हुए। भव्य पुरुषों, यदि तुम भी स्वर्ग या मोक्ष-सुख को चाहते हो, तो जिस तरह श्रीमती रेवती रानी ने मिथ्यात्व छोड़ा उसी तरह तुम भी मिथ्यात्व को छोड़कर स्वर्ग-मोक्ष के देने वाले, अत्यन्त पवित्र और बड़े-बड़े देव विद्याधर, राजा महाराजाओं से भक्तिपूर्वक ग्रहण किए हुए जैनधर्म का आश्रय स्वीकार करो ॥६६-६८॥

१०. जिनेन्द्रभक्त की कथा

स्वर्ग-मोक्ष के देने वाले श्रीजिनभगवान् को नमस्कार कर मैं जिनेन्द्रभक्त की कथा लिखता हूँ, जिन्होंने कि सम्यग्दर्शन के उपगूहन अंग का पालन किया था ॥१॥

नेमिनाथ भगवान् के जन्म से पवित्र और दयालु पुरुषों से परिपूर्ण सौराष्ट्र देश के अन्तर्गत एक पाटलिपुत्र नाम का शहर था। जिस समय की कथा है, उस समय वहाँ के राजा यशोध्वज थे। उनकी रानी का नाम सुसीमा था। वह बड़ी सुन्दर थी। उसके एक पुत्र था। उसका नाम था सुवीर। बेचारी सुसीमा के पाप के उदय से वह महाव्यसनी और चोर हुआ। सच तो यह है जिन्हें आगे कुयोनियों के दुःख भोगना होता है, उनका न तो अच्छे कुल में जन्म लेना काम आता है और न ऐसे पुत्रों से बेचारे माता-पिता को सुख होता है ॥२-५॥

गौडदेश के अन्तर्गत ताम्रलिप्ता नाम की एक पुरी है। उसमें एक सेठ रहते थे। उनका नाम था जिनेन्द्रभक्त। जैसा उनका नाम था वैसे ही वे जिनभगवान् के भक्त थे भी। जिनेन्द्रभक्त सच्चे सम्यग्दृष्टि

श्रेष्ठी जिनेन्द्रभक्ताख्यो जिनभक्तिपरायणः। संजातस्तत्र सदृष्टिः श्रावकाचारसच्चणः ॥७॥
 स्वर्मोक्षसस्यदं पूतं जिनोक्तं क्षेत्रसप्तकम्। तर्पयामास स श्रेष्ठी स्ववित्तजलदोत्करैः ॥८॥
 जिनेन्द्रभवनोद्धार-प्रतिमापुस्तकस्तथा। सङ्घश्चतुर्विधश्चेति संप्रोक्तं क्षेत्रसप्तकम् ॥९॥
 श्रेष्ठिनो विद्यते तस्य सम्यग्दृष्टेः शिरोमणेः। सप्तभूम्याश्रितोत्कृष्ट-प्रासादस्योपरिस्थिताः ॥१०॥
 श्रीमत्पार्श्वजिनेन्द्रस्य महायत्नेन रक्षिता। छत्रत्रयेण संयुक्ता प्रतिमा रत्ननिर्मिता ॥११॥
 तस्याश्छत्रत्रयस्योच्चै-रुपरिप्रस्फुरद्युतिः। मणिवैडूर्यनामास्ति बहुमूल्यसमन्वितः ॥१२॥
 तां वार्त्ता च समाकर्ण्य सुवीरस्तस्कराग्रणीः। स्वांस्तस्करान्प्रति प्राह तमानेतुं लसत्प्रभम् ॥१३॥
 अहो कोपि समर्थोऽस्ति तच्छ्रुत्वा सूर्यनामकः। चोरो जगाद भो स्वामित्रहं शक्रस्य मस्तकात् ॥१४॥
 आनयामि क्षणार्धेन शिरोरत्नं सुनिर्मलम्। युक्तं ये तु दुराचाराः स्युस्ते दुष्कर्मतत्पराः ॥१५॥
 ततोऽसौ सूर्यको धूर्तः कपटेन तदाज्ञया। धृत्वा क्षुल्लकरूपं च क्लेशतः क्षीणतां गतः ॥१६॥
 पर्यटन्नगरग्राम-पत्तनेषु निरन्तरम्। लोकान्प्रतारयन्नुच्चैः स्फीतिं सन्दर्शयन्निजाम् ॥१७॥
 क्रमेण ताम्रलिप्ताख्यां तां पुरीं प्राप्तवांस्ततः। श्रुत्वा जिनेन्द्रभक्तोसौ श्रेष्ठी तं वन्दितुं गतः ॥१८॥

थे और अपने श्रावक धर्म का बराबर सदा पालन करते थे। उन्होंने बड़े-बड़े विशाल जिनमन्दिर बनवाएँ, बहुत से जीर्ण मन्दिरों का उद्धार किया, जिनप्रतिमायें बनवाकर उनकी प्रतिष्ठा करवाई और चारों संघों को खूब दान दिया, उनका खूब सत्कार किया ॥६-९॥

सम्यग्दृष्टि शिरोमणि जिनेन्द्रभक्त का महल सात मंजिला था। उसकी अन्तिम मंजिल पर एक बहुत ही सुन्दर जिन चैत्यालय था। चैत्यालय में श्री पार्श्वनाथ भगवान् की बहुत मनोहर और रत्नमयी प्रतिमा थी। उस पर तीन छत्र, जो कि रत्नों के बने हुए थे, बड़ी शोभा दे रहे थे। उन छत्रों पर एक वैडूर्यमणि नाम का अत्यन्त कान्तिमान् बहुमूल्य रत्न लगा हुआ था। इस रत्न का हाल सुवीर ने सुना। उसने अपने साथियों को बुलाकर कहा-सुनते हो, जिनेन्द्रभक्त सेठ के चैत्यालय में प्रतिमा पर लगे हुए छत्रों में एक रत्न लगा हुआ है, वह अमोल है। क्या तुम लोगों में से कोई उसे ला सकता है? सुनकर उनमें से एक सूर्य नाम का चोर बोला, यह तो एक अत्यन्त साधारण बात है। यदि वह रत्न इन्द्र के सिर पर भी होता, तो मैं उसे क्षणभर में ला सकता था। यह सच भी है कि जो जितने ही दुराचारी होते हैं वे उतना ही पाप कर्म भी कर सकते हैं ॥१०-१५॥

सूर्य के लिए रत्न लाने की आज्ञा हुई वहाँ से आकर उसने मायावी क्षुल्लक का वेष धारण किया। क्षुल्लक बनकर वह व्रत उपवासादि करने लगा। उससे उसका शरीर बहुत दुबला-पतला हो गया। इसके बाद वह अनेक शहरों और ग्रामों में घूमता हुआ और लोगों को अपने कपटी वेष से ठगता हुआ कुछ दिनों में ताम्रलिप्ता पुरी में आ पहुँचा। जिनेन्द्रभक्त सच्चे धर्मात्मा थे, इसलिए उन्हें धर्मात्माओं को देखकर बड़ा प्रेम होता था। उन्होंने जब इस धूर्त क्षुल्लक का आगमन सुना तो उन्हें

दृष्ट्वा तं क्षुल्लकं चापि मायया तपसा कृशम् । स्तुत्वा प्रणम्य सद्भक्त्या नयति स्म निजालयम् ॥१९॥
 अहो धूर्तस्य धूर्तत्वं लक्ष्यते केन भूतले । यस्य प्रपञ्चतो गाढं विद्वान्सश्चापि वञ्चिताः ॥२०॥
 ततो विलोक्य चोरोऽसौ तं मणिं विस्फुरत्प्रभम् । सन्तुष्टो स्वर्णकारो वा कनत्काञ्चनवीक्षणात् ॥२१॥
 तदासौ श्रेष्ठिना तेन स्थापितः कपटव्रती । अनिच्छन्माययाप्युच्चै-रक्षार्थं तत्र भक्तितः ॥२२॥
 एकदासौ वणिग्वर्यः पृष्ट्वा तं क्षुल्लकं सुधीः । गन्तुं समुद्रयात्रायां पुरबाह्ये स्थितस्तदा ॥२३॥
 स तस्करः समालोक्य कुटुम्बं कार्यव्यग्रकम् । अर्धरात्रौ समादाय तं मणिं निर्गतो गृहात् ॥२४॥
 कोट्टपालैस्तदामार्गे दृष्टोसौ मणितेजसा । गृहीतुं च समारब्धो न समर्थः पलायितुम् ॥२५॥
 रक्ष रक्षेति संजल्पन् श्रेष्ठिनः शरणं गतः । तदा जिनेन्द्रभक्तोऽसौ श्रुत्वा कोलाहलध्वनिम् ॥२६॥
 ज्ञात्वा तं तस्करं धीमान्सम्यग्दृष्टिर्विशाम्पतिः । दर्शनोद्वाहनाशार्थं कोट्टपालान् जगाद च ॥२७॥
 रे रे मूर्खा भवद्विस्तु कृतं वाढं विरूपकम् । महातपस्विनश्चास्य तस्करत्वं यदीरितम् ॥२८॥
 मद्वाक्येन समानीतो मणिश्चैतेन धीमता । महाचारित्ररत्नेन नित्यं सम्भावितात्मना ॥२९॥

बड़ी प्रसन्नता हुई वे उसी समय घर का सब कामकाज छोड़कर क्षुल्लक महाराज की वन्दना करने के लिए गए। उसे तपश्चर्या से क्षीण शरीर देखकर उनकी उस पर और अधिक श्रद्धा हुई उन्होंने भक्ति के साथ क्षुल्लक को प्रणाम किया और बाद वे उसे अपने महल लिवा लाये। सब बात यह है कि- ॥१६-१९॥

जिनकी धूर्तता से अच्छे-अच्छे विद्वान् भी जब ठगे जाते हैं, तब बेचारे साधारण पुरुषों की क्या मजाल जो वे उनकी धूर्तता का पता पा सकें ॥२०॥

क्षुल्लक जी ने चैत्यालय में पहुँच कर जब उस मणि को देखा तो उनका हृदय आनन्द के मारे बाँसों उछलने लगा। वे बहुत सन्तुष्ट हुए। जैसे सुनार अपने पास कोई रकम बनवाने के लिए लाये हुए पुरुष के पास का सोना देखकर प्रसन्न होता है क्योंकि उसकी नियत सदा चोरी की ओर ही लगी रहती है ॥२१॥

जिनेन्द्रभक्त को उसके मायाचार का कुछ पता नहीं लगा। इसलिए उन्होंने उसे बड़ा धर्मात्मा समझ कर और मायाचारी से क्षुल्लक के मना करने पर भी जबरन अपने जिनालय की रक्षा के लिए उसे नियुक्त कर दिया और आप उससे पूछकर समुद्रयात्रा करने के लिए चल पड़े ॥२२-२३॥

जिनेन्द्रभक्त के घर बाहर होते ही क्षुल्लक जी की बन पड़ी। आधी रात के समय आप उस तेजस्वी रत्न को कपड़ों में छुपाकर घर से बाहर हो गए। पर पापियों का पाप कभी नहीं छुपता। यही कारण था कि रत्न लेकर भागते हुए उसे सिपाहियों ने देख लिया। वे उसे पकड़ने को दौड़े। क्षुल्लक जी दुबले पतले तो पहले ही से हो रहे थे, इसलिए वे अपने को भागने में असक्त समझ लाचार होकर जिनेन्द्रभक्त की ही शरण में गए और प्रभो, बचाइये! बचाइये!! यह कहते हुए उनके पाँवों में गिर पड़े। जिनेन्द्रभक्त ने, 'चोर भागा जाता है! इसे पकड़ना' ऐसा हल्ला सुन करके जान लिया कि यह चोर है और क्षुल्लक वेष में लोगों को ठगता फिरता है। यह जानकर भी सम्यग्दर्शन की निन्दा के भय से जिनेन्द्रभक्त ने क्षुल्लक के पकड़ने को आए हुए सिपाहियों से कहा-आप लोग बड़े कम समझ के हैं!

इत्याकर्ण्य तमानम्य श्रेष्ठिनं गुणशालिनम्। कोट्टपालजनाः शीघ्रं स्वस्थानं ते गतास्ततः ॥३०॥
 श्रेष्ठी तस्मात्समादाय तं मणिं तेजसा युतम्। एकान्ते तं प्रति प्राह दुराचारसमन्वितम् ॥३१॥
 रे रे नष्ट महाकष्ट धिक्ते पापिष्ठ चेष्टितम्। अन्यायेन रतो मूढो दुर्गतिं यास्यसि ध्रुवम् ॥३२॥
 ये कृत्वा पातकं पापाः पोषयन्ति स्वकं भुवि। त्यक्त्वा न्यायक्रमं तेषां महादुःखं भवार्णवे ॥३३॥
 कुमार्गकलितो लोकः क्षयं याति न संशयः। तीव्रतृष्णातुरः प्राणी त्वदृशः पापपण्डितः ॥३४॥
 इत्यादिदुर्वचोवज्र-पातेनैव निहत्य च। चक्रे निष्कासनं तस्य स्वस्थानात्स गुणाकरः ॥३५॥
 एवमन्यो महाभव्यो दुर्जनासक्तलम्पटैः। दर्शनस्यागते दोषे कुर्यादाच्छादनं श्रिये ॥३६॥
 विमलतरजिनेन्द्रप्रोक्तमार्गेण दोषं वदति विगतबुद्धिर्यस्तु सोस्ति प्रमत्तः।
 अमृतरससमानं शर्करादुग्धपानं कटु भवति न किं वा दुष्टपित्तज्वराणाम् ॥३७॥
 इति कथाकोशे उपगूहनाङ्गे जिनेन्द्रभक्तस्य कथा समाप्ता।

११. श्रीवारिषेणमुनेः कथा

श्रीमज्जिनं जगत्पूज्यं नत्वा भक्त्या प्रवच्यहम्। सुस्थितिकरणाङ्गे च वारिषेणस्य सत्कथाम् ॥१॥

आपने बहुत बुरा किया जो एक तपस्वी को चोर बतला दिया। रत्न तो ये मेरे कहने से लाये हैं। आप नहीं जानते कि ये बड़े सच्चरित्र साधु हैं? अस्तु। आगे से ध्यान रखिये। जिनेन्द्रभक्त के वचनों को सुनते ही सब सिपाही लोग ठण्डे पड़ गए और उन्हें नमस्कार कर चलते बने ॥२४-३०॥

जब सब सिपाही चले गए तब जिनेन्द्रभक्त ने क्षुल्लक जी से रत्न लेकर एकान्त में उनसे कहा— बड़े दुःख की बात है कि तुम ऐसे पवित्र वेष को धारण कर उसे ऐसे नीच कर्मों से लजा रहे हो? तुम्हें यही उचित है क्या? याद रखो, ऐसे अनर्थों से तुम्हें कुगतियों में अनन्त काल दुःख भोगना पड़ेंगे। शास्त्रकारों ने पापी पुरुषों के लिए लिखा है कि— ॥३१-३२॥

अर्थात्—जो पापी लोग न्यायमार्ग को छोड़कर और पाप के द्वारा अपना निर्वाह करते हैं, वे संसार समुद्र में अनन्त काल दुःख भोगते हैं। ध्यान रखो कि अनीति से चलने वाले और अत्यन्त तृष्णावान् तुम सरीखे पापी लोग बहुत ही जल्दी नाश को प्राप्त होते हैं। तुम्हें उचित है, तुम बड़ी कठिनता से प्राप्त हुए इस मनुष्य जन्म को इस तरह बर्बाद न कर कुछ आत्म हित करो। इस प्रकार शिक्षा देकर जिनेन्द्रभक्त ने अपने स्थान से उसे अलग कर दिया ॥३३-३५॥

इसी प्रकार और भी भव्य पुरुषों को, दुर्जनों के मलिन कर्मों से निन्दा को प्राप्त होने वाले सम्यग्दर्शन की रक्षा करनी उचित है। जिनभगवान् का शासन पवित्र है, निर्दोष है, उसे जो सदोष बनाने की कोशिश करते हैं, वे मूर्ख हैं, उन्मत्त हैं। ठीक भी है उन्हें वह निर्दोष धर्म अच्छा जान भी नहीं पड़ता। जैसे पित्तज्वर वाले को अमृत के समान मीठा दूध भी कड़वा ही लगता है ॥३६-३७॥

११. वारिषेण मुनि की कथा

मैं संसारपूज्य जिनभगवान् को नमस्कार कर श्रीवारिषेण मुनि की कथा लिखता हूँ, जिन्होंने